Volume : 5 | Issue : 12 | December-2016 ISSN - 2250-1991 | IF : 5.215 | IC Value : 79.96

Indian Journal of Research PARIPEX

Original Research Paper Hindi

^gfj ;k.koh fluek dk ykd&lnHk*

Mk jktsk dekj | सहायक प्राद्यापक, रामलाल आनंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

KEYWORDS

भारतीय सिनेमा के संदर्भों में आज का समय क्षेत्रीय सिनेमा के उत्थान का समय है। भारत संघ के सभी राज्यों में आज के समय क्षेत्रीय सिनेमा को बचाने के लिए अथक प्रयास किए जा रहे हैं। यह जरूरी भी है, क्योंकि अत्याधुनिक तकनीक के प्रयोग से सजे सिनेमा ने लोक–संदर्भों को लगभग भूला दिया है। ऐसी स्थिति में क्षेत्रीय सिनेमा के सामने अस्तित्व का संकट पैदा हो गया। अन्य राज्यों की भांति हरियाणवी फिल्मों की संरचना भी इसी दौर से गुजर रही है। अपने प्रारम्भिक दौर में हरियाणवी सिनेमा काफी उत्साहवर्धक रहा और इसकी शुरूआत 'बहुरानी' फिल्म से हुई जो कि एक कमर्शियल फिल्म थी। यह एक धीमी और अच्छी शुरूआत मानी जा सकती है। 'चन्द्रावल' फिल्म अपनी अच्छी प्रस्तुति और विशय के कारण विशुद्ध मनोरंजन के कारण एक कालजयी फिल्म बन गयी। आर्थिक दृश्टिकोण से भी यह फिल्म हरियाणवी सिनेमा के लिए प्रेरणादायक रही। मधुर संगीत, गीत व लोक संस्कृति के संयोजन से सजी यह लोक प्रस्तुति हमेशा दर्शकों के बीच लोकप्रिय बनी रहेगी। माटी की सौंधी खुशबू से युक्त 'जर, जोरू और जमीन' नामक फिल्म की चर्चा भी लोक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में की जा सकती है। इसमें बड़ी रोचकता के साथ बताया गया है कि ग्रामीण समाज में व्याप्त समस्याओं के मूल में कौन–कौन से कारक हैं। लोभ–लालच की बढ़ती प्रवृति ने किस तरह ग्रामीण समाज और परिवारों को खण्डित किया है, यह इस फिल्म की पटकथा के केन्द्र में मनोरंजन की दृश्यावलियों में भी बना रहता है। अतः यह फिल्म क्षेत्रीय सिनेमा के विकास में महत्वपूर्ण साबित हुई। 'बैरी', 'गुलाबो', 'लाडो बसंती' 'छैल गाबरू', 'फूल बदन', 'छैल गैल्यां जांगी' फिल्मों ने मनोरंजन के नए आयाम निर्मित किए और जिससे फिल्म निर्माण के विशयों के अनेक विकल्प सामने आए। यहाँ तक हरियाणवी सिनेमा अनेक सम्भावनाओं से भरा दिखाई देता है। इसके बाद सन् 2000 में अश्वनी चौधरी द्वारा निर्देशित फिल्म 'लाडो' ने ही हरियाणवी सिनेमा को राश्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाई जब उसे बेस्ट फिल्म श्रेणी में इन्दिरा गांधी अवार्ड के लिए चुना गया।यह सम्मान इस फिल्म को अंग्रेजी फिल्म 'डॉलर ड्रीम' के साथ साझा रूप में मिला। यह फिल्म विवाहेतर सम्बन्धों के उपर बनी अच्छी फिल्म थी, इसमें दिखाया गया है कि किस प्रकार आधुनिक जीवन शैली की सोच ने ग्रामीण समाज को प्रभावित किया है। 'चन्द्रावल' के बाद यह दूसरी फिल्म थी जिसके गीत संगीत की सफलता ने हरियाणवी फिल्म उद्योग को आर्थिक मजबूती दी। यह विवाह नामक संस्था के जटिल रूप पर आधारित फिल्म है जिसने समाज में एक नयी नैतिक बहस को छेड़ दिया।

उपरोक्त फिल्में हरियाणवी फिल्म उद्योग में आदर्श रूप प्रस्तुत करती हैं, फिर भी आखिर वो कौन सी खामियाँ हैं जिनके चलते फिल्म निर्माण उस गति से नहीं हो पा रहा है जिस गति से होना चाहिए। ऐसा भी नहीं है कि सरकारी या गैर सरकारी स्तर पर इसके लिए कोई प्रयास नहीं हुए। रंगमंच और फिल्म उद्योग से जुड़े कलाकारों से इस सम्बन्ध में सुझाव भी माँगे गये व कार्यशालाएं भी आयोजित की गयी। रोहतक जिले में फिल्म संस्थान की स्थापना भी इस क्षेत्र में किए गए सार्थक प्रयासों की दशा और दिशाओं को दर्शाता है। फिर भी वे कौन से कारण हैं जिनके चलते हरियाणवी फिल्म उद्योग सफलता को छू नहीं पाया जिसका हकदार वह अपनी स्वाभाविकता, बेबाकीपन और खांटी अदांज की संस्कृति के कारण है।

हरियाणवी फिल्म उद्योग के विकास के लिए जरूरी है जनता का समर्थन। इस क्षेत्र के निवासियों को आधुनिक जीवन शैली ने सबसे ज्यादा प्रभावित किया है, आधुनिकता के इस चरम ने यहाँ के लोगों से स्वाभाविकता को छिना है। नगरीकरण का आधुनिक रूप, सूचना प्रोद्यौगिकी का फैलाव, पारम्परिक संसाधनों से अलगाव, आधुनिक सुख–सुविधाओं के साधन, लोक–संस्कृति के प्रचार में कमी आदि ऐसे कारण हैं जिनके चलते इस विशुद्ध स्थानीय लोक कला की प्रस्तुति का ह्रास हो रहा है।यदि हमें प्रस्तुति की इस लोक कला को बचाना है तो इसे केवल सरकारी संसाधनों के भरोसे नहीं छोड़ा जाना चाहिए बल्कि जनता को स्वयं इसके संरक्षण के लिए हर समय जागरूक रहना होगा। सरकार अपने स्तर पर लोक साहित्य और संस्कृति के प्रचार और प्रसार के लिए अनेक कार्यक्रमों का आयोजन करती है और जनता उसका भरपूर आनन्द भी उठाती है परन्तु इस तथ्य पर बिल्कुल विचार नहीं करती कि विशुद्ध हरियाणवी बोलने वालों की संख्या लगातार कम होती जा रही है। हर परिवार अपने बच्चों को अंग्रेजी व विशुद्ध हिन्दी बोलने का तुगलकी फरमान सुनाना पसंद करता है और ऐसा करने पर हम उसकी बलैया लेते हैं। जिस लोक भाशा में हमनें जन्म लिया है, जिसमें हम खेलते कूदते हैं, जिसमें हम अपने सभी उत्सव मनाते हैं और जिसमें हम मनोरंजन करते हैं आज उसी बोली के संरक्षण के लिए इतना अलगाव क्यों ? हरियाणवी बोली के प्रति यह रूखापन हमारे दोहरे मानदण्डो को चित्रित करता है।

अपनी ऐतिहासिक विरासत के आईने में हरियाणा अनेक छवियों को संजोये हुए है। यदि इन छवियों को चिन्हित किया जाये तो आज की पीढ़ी को निश्चित रूप से अपनी बोली और संस्कृति पर गर्व होगा। इसमें लोक व्यवहारों का तार्किक रूप नजर आयेगा और यह लोक व्यवहार कोई आधुनिकता का विरोध नहीं करती बल्कि उसे और निखार देती है इससे लोक जीवन में नए उल्लास का सृजन होता है। हरियाणवी भाशा के मौखिक साहित्य की प्रस्तुति पहले उत्सव, पर्व या विवाह आदि के अवसर पर देखने को मिलती थी परन्तु लोक नाटकों के मंचन और फिल्मों के अस्तित्व में आने के बाद इस साहित्य के लगातार सिंचन की आस जगी है। अपने शुरूआती दौर में हरियाणवी फिल्मों ने यहाँ की संस्कृति को पूरी ईमानदारी से सिनेमा के पर्दे पर उतारा। फाग, लूर, धमाल, गुगा, झुमर, खोरिया, छठी, तीज, साँग आदि लोक नृत्यों का जीवन्त आनन्द सिनेमा के पर्दे पर दखने को मिला। पहली बार हरियाणवी सिनेमा का अद्भूत अहसास हुआ कि इसमें लोक संस्कृति की प्रस्तुति का सामर्थ्य है, यह सफलता उत्साह को बढ़ाने वाली थी। पहली बार हम यहाँ के वाद्य यंत्रों के प्रभावों से परिचित हुए। आज के समय यह लोक प्रस्तुति अपनी निरन्तरता में दिखाई नहीं देती, नब्बे के दशक के अन्त तक आते आते स्थानीय फिल्मों का अकाल पड़ने लगा। 'लाढ़ो' के बाद चुनिंदा फिल्में ही आई जिनका ठीक ढ़ंग से पता भी नहीं चला और इस तरह यह खास प्रस्तुति विशेश अवसरों तक ही सीमित रह गयी। इस समय हम इसका आनन्द सरकार द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में ले सकते हैं जहाँ सभी लोगों का पहुँचना सुलभ नहीं हो सकता या फिर कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय के सालाना उत्सव 'रत्नावली' में इसकी छटा दिखाई देती है परन्तु यह केवल विश्वविद्यालय के छात्रों तक ही सीमित रहती है। 'सांग' यहाँ की लोक संस्कृति को बढ़ावा देने का उत्तम पारम्परिक माध्यम रहा है परन्तु 'पॉपुलर कल्चर' के प्रभाव ने इस माध्यम में लोगों की दिलचस्पी को कम किया है। पं. लखमी चन्द के बाद उनके सुपुत्र तुले राम ने 'सांग' जैसी प्रतिष्ठित विधा को बढ़ावा दिया परन्तु सरकारी उपेक्षा के चलते और लोगों के समर्थन के अभाव में आज यह नई पीढ़ी को अपने साथ नहीं जोड़ पा रही है। हरियाणा की यह एक मात्र विधा है जो यहाँ के लोगों की रगों में समाई है। इस विधा के कारण ही सांग, रागिनी और पं. लखमी चन्द एक दूसरे के पर्याय बने हुए हैं। रागिनी का जादू आज भी लोगों के सिर चढ़ कर बोलता है इसी में हरियाणा की लोक संस्कृति का पूर्ण रूप दिखाई देता है। लोक संस्कृति के इस माध्यम को उत्तर आधुनिकता की विशैली छाया से बचाना होगा और हमें उन आयामों को खोजना होगा जो इसे लगातार संरक्षण दे सके। देवताओं, राजाओं के चरित्रों और स्थानीय किस्सों कहानियों की प्रस्तुति को केवल इसी माध्यम से ही पूरी तन्मयता के साथ सुना व समझा जा सकता है।

निश्कर्श रूप से कहा जा सकता है कि लोक कलाओं के संरक्षण के लिए जरूरी है राजकीय स्तर पर प्रयास किए जाने चाहिए और सरकारी स्तर पर लोक कलाओं से जुड़ी उन सभी ललित कलाओं के रूपों में नए सिरे से अनुप्रयोग किया जाना चाहिए जिससे वे आम जनजीवन में विशुद्ध मनोरंजन व सम्प्रेशण का हिस्सा बन सके।